क्यों छोड़ा स्कूल 'ओटा' ने

जापान में लगभग सभी बच्चे स्कूल जाते हैं। लेकिन इनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो स्कूली व्यवस्था से तंग आकर बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं। इन्हें 'इनकारी बच्चे' के नाम से जाना जाता है। इन बच्चों को खासी सामाजिक और मानसिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। ऐसे ही एक बच्चे **'ओटा माल्कु'** ने अपने स्कूल के अनुभवों और अपने जैसे ही दूसरे बच्चों के बारे में लिखा है। उसके लेख का *यमुना सनी* द्वारा संपादित अंश हम यहां दे रहे हैं।

जापान में बच्चों का स्कूल जाना काफी स्वाभाविक है। वहां करीब सभी बच्चे स्कूल जाते हैं। लेकिन धीरे-धीरे कुछ बच्चों के लिए स्कूल एक ऐसी जगह बन जाता है जहां जाना उनके लिए नामुमकिन-सा हो जाता है – और वे स्कूल जाना बंद कर देते हैं। इन्हें कहते हैं 'इनकारी बच्चे' – जिन्होंने स्कूल जाने से इनकार कर दिया। शिक्षा मंत्रालय का अंदाज़ा है कि, जापान में अभी ऐसे करीब 65,000 बच्चे हैं और यह आंकड़ा तेज़ी से बढ़ रहा है।

मैं ऐसे ही 'इनकारी बच्चों' में से एक हूं। मैं स्कूल से नफरत क्यों करने लगा, और मैंने स्कूल जाना क्यों छोड़ दिया, यह समझने के लिए मेरे अतीत को थोड़ा कुरेदना पड़गा; और खासतौर से उस हिस्से को जब मैं प्राथमिक स्कूल के छठवें साल में था और मेरी उम्र बारह वर्ष थी।

अपने शिक्षक का रवैया मेरी परेशानी का बहुत बड़ा कारण था। वो हमें उपहासपूर्ण तरीके से देखते थे। अभी मैं सोलह साल का हूं; तो स्वाभाविक है कि

मेरी क्षमताएं और समझ मुझसे बड़े और अनुभवी लोगों जितनी विकसित नहीं हो सकतीं। इस वजह से मेरी उपेक्षा की जाए, ये तो काफी तर्कहीन बात है न।

इसलिए स्कूल में उस शिक्षक के संपर्क में रहना मेरे लिए बड़ा ही पीड़ादायक था। स्कूल में मुझे ऐसा लगता मानो मेरा गला घुट रहा हो। अंततः स्कूल जाना शुरू करने के करीब साढ़े तीन महीने बाद मुझे काफी गंभीरता से लगने लगा, 'मुझे स्कूल जाने से घृणा हो गई है।' उसी दिन शिक्षक ने मुझे मारा। मैंने उन्हें पलटकर जवाब दिया तो उन्होंने मुझे खींच कर तमाचा मारा। उसी रोज़ मैंने पक्की तरह सोच लिया कि मुझे इस जगह से नफरत है। कुछ दिनों बाद गर्मी की छुट्टियां शुरू हो गईं। तकरीबन डेढ़ महीने मैं स्कूल से दूर रहा। उसके बाद स्कूल खुला, लेकिन मैं नहीं गया – और इस तरह मैं भी 'इनकारी बच्चों' की जमात में शामिल हो गया।

गैरों का भय

शुरू में पहले दो हफ्ते तो मैं घर से बाहर निकलने का साहस ही नहीं जुटा पाया। मुझे समझ नहीं आता था कि दिन भर मैं क्या करूं। बाहर सड़क पर भी मुझे लोगों से मिलने में डर लगने लगा।

जापान में छह और उससे बड़ी उम्र के सभी बच्चे आमतौर पर स्कूल जाते हैं। जो बच्चे वास्तव में बुद्धिमान हैं और ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता के पास पैसा है, वे सब प्राइवेट स्कूलों में जाते हैं। लेकिन मेरे जैसे बच्चों को इच्छा न होते हुए भी सरकारी स्कूलों में प्रवेश लेना पड़ता है। हमारे यहां एक आम धारणा है कि जो बच्चे स्कूल नहीं जाते और स्नातक की डिग्री नहीं ले पाते वे एक प्रतिष्ठित जीवन नहीं जी सकते।

'स्कूल न जाना मानो एक अवांछनीय कार्य है, अतः मेरी ज़िंदगी एक घृणित इंसान की तरह व्यतीत होगी।' ऐसा सब सोचते रहने के कारण मैं करीब दो हफ्ते बाद ही घर से बाहर अपना पहला कदम निकाल पाया, और वह भी अंधेरा होने के बाद। मुझे ऐसा महसूस हो रहा था मानो लोगों की निगाहें मुझे ही घूर रही हों। बहुत मुश्किल समय था वो, जब मैं अपने आप को खुद भी स्वीकार नहीं कर पा रहा था।

ऐसी कई घटनाएं हैं जब 'इनकारी बच्चों' को पीटा गया हो, कइयों की तो जान भी चली गई है। और यह सब हुआ है उन प्राइवेट संस्थाओं में जो 'इनकारी बच्चों' के स्कूल छोड़ने की समस्या के हल के लिए बनाई गई हैं। कई मामलों में तो पूर्वाग्रहों के चलते बच्चे अपना मानसिक संतुलन तक खो बैठे हैं। यह धारणा कि 'इनकारी बच्चे' बेकार होते हैं, न सिर्फ पालकों और शिक्षकों में बल्कि बच्चों में भी झलकती है।

'इनकारी बच्चों' के लिए एक जगह

मुझे स्कूल छोड़े हुए चार साल होने को आए हैं। इनमें से तीन साल मैं एक संस्था 'टोक्यो शूल' में रहा। यहां टोकियो के लगभग डेढ़ सौ बच्चे – जिनमें से

ज़्यादातर 'इनकारी' हैं – इकट्ठे होते हैं और कुछ-कुछ सीखते हैं। 'शूल' सोमवार से लेकर शुक्रवार तक सुबह दस बजे से देर रात तक खुला रहता है। यहां आने वाले बच्चे छह से लेकर उन्नीस वर्ष के बीच के हैं। इस संस्था में करीब बारह लोग काम करते हैं। देखा जाए तो यह 'शूल' एक तरह से सामान्य जापानी स्कूल से बिल्कुल विपरीत है।

यहां कोई बंधन नहीं है। कोई स्कूल आए या नहीं आए, कक्षा में बैठे या न बैठे, गतिविधियों में भाग ले या नहीं – सभी कुछ खुद के निर्णय पर निर्भर है। यहां जापानी, गणित, विज्ञान, समाज-शास्त्र और अंग्रेज़ी की कक्षाएं रोज़ दो से तीन घंटों तक होती हैं।

'शूल' की एक और विशेषता यहां होने वाली साप्ताहिक बैठक है, जो करीब तीन घंटे चलती है। इसमें सभी बच्चे और कार्यकर्ता भाग लेते हैं। 'शूल' से जुड़े किसी भी मुद्दे को लेकर यहां बहस हो सकती है। समस्या का हल खोजने की इस प्रक्रिया में आमतौर पर मतदान की स्थिति भी आती रहती है। मतदान में बच्चों और कार्यकर्ताओं, सभी का समान रूप से एक वोट होता है।

'शूल' में रहने के दौरान मैंने कई दिन वहां के डार्करूम में खुद खींचे फोटो तैयार करने में बिताए, साथ ही मैंने 'शूल' के अखबार का संपादन किया और रेडियो प्रसारण से स्पेनिश सीखी। स्कूल में बिताए गए सालों की तुलना में यह समय बहुत ही आराम और सहजता से बीता। यहां मैंने स्कूलों में आमतौर पर होने वाली पढ़ाई तो नहीं की लेकिन कई अन्य बातें सीखीं। तरह-तरह के लोगों से मिला और कई स्थान देखे।

स्कूल का औचित्य

स्कूल के बाहर बिताए इन चार सालों के अनुभव के बाद मैं सुबह से शाम तक कक्षा में बैठकर अंग्रेज़ी, विज्ञान और गणित जैसे विभिन्न विषयों को पढ़ाने के महत्व के बारे में शंकालु हो उठा हूं।

यहां मेरा मतलब यह नहीं है कि रसायन, भौतिकी, गणित आदि पढ़ना बेकार है, लेकिन यह बहुत हद तक व्यक्तिगत रुचि का मामला है। जिन लोगों को ये विषय नहीं आते उन्हें रोज़मर्रा के जीवन में ऐसी कोई विशेष कठिनाई नहीं आती। होता तो यह भी है कि जिन लोगों ने ये विषय विद्यालय और कॉलेज में पढ़े हैं वे भी हमेशा इन्हें याद नहीं रख पाते। इसलिए मेरे मन में सवाल उठता है कि बिना इच्छा के यह सब सीखने का क्या औचित्य? सबसे ज़रूरी तो यह है कि जो पढ़ना चाहते हैं उन्हें वैसा ही मौका दिया जाए, न कि समाज के सभी लोगों को ज़बरदस्ती सब कुछ एक जैसा पढ़ने के लिए मजबूर किया जाए।

यह लेख ओटा माल्कू के 'स्कूल बगैर जीने की कहानी: एक इनकारी बच्चे की ज़बानी' से संकलित है। ओटा माल्कू का लेख AMPO, Ja; an Asia Quarterly Review. vol. 25, No. 1 में छपा था।
यमुना सनी – एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम में कार्यरत। अनुवाद: अमृता पटवर्धन।